eISSN 2581-8996
HTTPS://DOI.ORG/10.5281/ZENODO.21966477
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 09, Issue 02, July 2026

चौखम्भा राज्य से सहभागी लोकतंत्र तकः डॉ. राम मनोहर लोहिया के विकेंद्रीकरण चिंतन की समकालीन संवैधानिक प्रासंगिकता

राम नारायण[1]
[1]सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, पीएसएम पीजी कॉलेज, कन्नौज, उत्तर प्रदेश, भारत

Received: 21 July 2026, Accepted: 25 July 2026, Published with Peer Reviewed on line: 31 July 2026

Abstract

भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ — पंचायती राज संस्थाएँ — 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन (1992) के माध्यम से संवैधानिक दर्जा तो प्राप्त कर चुकी हैं, किंतु निधि (funds), कार्य (functions) और कार्मिक (functionaries) के त्रिविध अभाव के कारण उनकी वास्तविक स्वायत्तता आज भी सीमित बनी हुई है। यह शोध–पत्र इस संस्थागत यथार्थ को डॉ. राम मनोहर लोहिया के "चौखम्भा राज्य" के मानक–आदर्श (normative ideal) के विरुद्ध रखकर परखता है, जिसमें उन्होंने गाँव, ज़िला, प्रांत और केंद्र — इन चार स्तंभों पर आधारित एक ऐसी सत्ता–संरचना की कल्पना की थी जो केवल प्रशासनिक विकेंद्रीकरण नहीं, बल्कि आर्थिक–राजनीतिक समता का साधन भी हो। शोधपत्र का तर्क त्रिस्तरीय सैद्धांतिक ढाँचे पर टिका हैः लोहिया का चौखम्भा एवं सप्तक्रांति चिंतन केंद्रीय मानक–कसौटी के रूप में; कैरोल पेटमैन एवं शेरी अर्नस्टीन का सहभागी–विमर्शमूलक लोकतंत्र सिद्धांत तुलनात्मक–वैश्विक संदर्भ प्रदान करने हेतु; और सहायकता का सिद्धांत (subsidiarity) संवैधानिक–संस्थागत विश्लेषण के औज़ार के रूप में। पद्धति की दृष्टि से यह पत्र गुणात्मक, व्याख्यात्मक एवं दस्तावेज़ी विश्लेषण पर आधारित है, जिसमें लोहिया की मूल कृतियों, संवैधानिक प्रावधानों, पंचायती राज मंत्रालय की विकेंद्रीकरण–सूचकांक रिपोर्टों तथा नीति आयोग के दस्तावेज़ों का सहपठन किया गया है। प्रारंभिक विश्लेषण यह संकेत करता है कि पंचायती राज संस्थाएँ लोहिया के आदर्श की औपचारिक छाया तो हैं, किंतु सत्ता के वास्तविक हस्तांतरण की दृष्टि से उनसे काफी दूर खड़ी हैं — और यही अंतराल लोहिया के चिंतन को आज भी प्रासंगिक बनाता है।

प्रमुख शब्द– चौखम्भा राज्य; सप्तक्रांति; सहभागी लोकतंत्र; सहायकता का सिद्धांत; पंचायती राज संस्थाएँ; विकेंद्रीकरण

Introduction

पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा दिए हुए तीन दशक से अधिक बीत चुके हैं। 24 अप्रैल 1993 को जब 73वाँ संविधान संशोधन लागू हुआ, तब भारत ने विश्व के सबसे बड़े जमीनी लोकतंत्रीकरण–प्रयोग की शुरुआत की — लगभग ढाई लाख ग्राम पंचायतें, छह हज़ार से अधिक ब्लॉक पंचायतें, छह सौ से अधिक ज़िला पंचायतें, और तीनों स्तरों को मिलाकर लगभग तीस लाख निर्वाचित प्रतिनिधि, जिनमें से करीब आधे (लगभग 46 प्रतिशत, अर्थात् 14.5 लाख से अधिक) महिलाएँ हैं। संख्याओं की दृष्टि से यह एक असाधारण उपलब्धि है। किंतु संख्याओं के भीतर झाँकने पर एक अधूरी कहानी उभरती है — निधि, कार्य और कार्मिक के त्रिविध हस्तांतरण (3F devolution) में लगातार बना हुआ अंतराल, "प्रधान–पति" जैसी छद्म–प्रतिनिधित्व की समस्या, और नियोजन–प्रक्रिया पर राज्य के नौकरशाही तंत्र का गहरा नियंत्रण। संविधान ने पंचायतों को "स्वशासन की संस्थाएँ" (institutions of self–government) कहा, पर तीन दशक की व्यावहारिक यात्रा

eISSN 2581-8996
HTTPS://DOI.ORG/10.5281/ZENODO.21966477
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 09, Issue 02, July 2026

यह प्रश्न उठाती है कि क्या ये सचमुच स्वशासन की इकाइयाँ बन पाई हैं, या केवल केंद्र और राज्य द्वारा तय की गई योजनाओं की क्रियान्वयन–एजेंसी बनकर रह गई हैं। यही असंगति इस शोध–पत्र का प्रस्थान–बिंदु है।

भारतीय राजनीतिक चिंतन–परंपरा में विकेंद्रीकरण की मानक–कल्पना पर सबसे प्रभावशाली हस्तक्षेप गांधी के "ग्राम स्वराज" के साथ जुड़े हुए हैं — गाँव को स्वायत्त, आत्मनिर्भर गणतंत्र मानने वाली वह दृष्टि, जिसे उन्होंने हिंद स्वराज में विकसित किया। किंतु गांधी के आदर्श और स्वतंत्र भारत की संवैधानिक संरचना के बीच एक गहरी असंगति थी; डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान सभा में गाँव को "स्थानीयता का दलदल, अज्ञान, संकीर्णता और साम्प्रदायिकता का अड्डा" कहकर इस मोहक ग्राम–आदर्श को खारिज किया और कहा कि उन्हें प्रसन्नता है कि प्रारूप संविधान ने गाँव को त्यागकर व्यक्ति को अपनी इकाई के रूप में अपनाया है। इन दो ध्रुवों — गांधीवादी ग्राम–रूमानियत और अंबेडकरवादी संस्थागत–यथार्थ — के बीच डॉ. राम मनोहर लोहिया ने एक तीसरा मार्ग सुझाया, जिसे उन्होंने "चौखम्भा राज्य" (Four–Pillar State) का नाम दिया। यह मार्ग न तो गाँव को अकेली इकाई मानता था, न ही केंद्र को सर्वोच्च; बल्कि गाँव, ज़िला, प्रांत और केंद्र — इन चारों को समान गरिमा वाले संवैधानिक स्तंभ मानता था, जिनके बीच सत्ता, संसाधन और उत्तरदायित्व का बँटवारा हो।

लोहिया की यह अवधारणा उनके व्यापक चिंतन का अंग थी, जिसे उन्होंने "सप्तक्रांति" के नाम से व्यवस्थित किया — जाति–विनाश, नारी–मुक्ति, वर्ण–भेद का अंत, आर्थिक समता, विश्व–सरकार, व्यक्ति की वैचारिक स्वतंत्रता, और अहिंसक नागरिक अवज्ञा — जिसमें सात एक साथ घटित होने वाली क्रांतियाँ शामिल थीं। सप्तक्रांति की इस बड़ी परियोजना में चौखम्भा राज्य आर्थिक–राजनीतिक समता का संस्थागत औज़ार था, केवल प्रशासनिक सुविधा नहीं। योगेंद्र यादव के शब्दों में लोहिया एक ऐसे विचारक थे जिन्हें उनके अपने समय में सुनने से इनकार किया गया — स्वतंत्रता के बाद के भारत में विचारों की संस्थागत दुनिया की जो दो सबसे प्रभावशाली धाराएँ थीं — नेहरूवादी और मार्क्सवादी — उनके साझा प्रभुत्व ने लोहिया के इर्द–गिर्द चुप्पी की एक अकादमिक दीवार खड़ी कर दी। यही चुप्पी आज भी अकादमिक साहित्य में एक दृश्यमान अंतराल के रूप में उपस्थित है।

2. साहित्य समीक्षा एवं शोध–अंतराल– मौजूदा साहित्य को मोटे तौर पर तीन धाराओं में बाँटा जा सकता है। एक ओर, लोहिया–विशिष्ट राजनीतिक–सैद्धांतिक साहित्य है, जिसमें उनकी सप्तक्रांति, समाजवाद और जाति–चिंतन पर तो पर्याप्त कार्य हुआ है, किंतु चौखम्भा को समकालीन संवैधानिक विश्लेषण से जोड़ने का प्रयास सीमित रहा है — मही पाल (2011) का EPW लेख इस दिशा में एक अपवाद है, पर वहाँ भी सैद्धांतिक ढाँचा नहीं खोला गया। दूसरी ओर, विकेंद्रीकरण और पंचायती राज पर विस्तृत नीति–अध्ययन साहित्य है — विकेंद्रीकरण–सूचकांक, वित्त आयोग की सिफारिशें, आरक्षण के प्रभाव पर चट्टोपाध्याय एवं दुफ्लो (2004) जैसे प्रयोगात्मक अध्ययन — किंतु यह साहित्य प्रायः तकनीकी–प्रबंधकीय दृष्टि से चलता है, इसमें कोई मौलिक भारतीय मानक–दृष्टि अनुपस्थित रहती है। तीसरी ओर, सहभागी–विमर्शमूलक लोकतंत्र का पश्चिमी सैद्धांतिक साहित्य है — पेटमैन, अर्नस्टीन, हेबरमास — जिसे भारतीय पंचायती राज पर लागू करने के प्रयास हुए हैं, पर वहाँ भी लोहिया–जैसे देशज विचारक से संवाद प्रायः नहीं दिखता। इन तीनों धाराओं के बीच जो पुल गायब है, वह है — लोहिया के चौखम्भा–आदर्श को केंद्रीय मानक–दृ

eISSN 2581-8996
HTTPS://DOI.ORG/10.5281/ZENODO.21966477
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 09, Issue 02, July 2026

ष्टि बनाकर, सहायकता (subsidiarity) और सहभागी–लोकतंत्र सिद्धांत की व्याख्यात्मक शक्ति के साथ, 73वें–74वें संशोधन की तीन दशक की व्यावहारिक यात्रा का मूल्यांकन।

इसी अंतराल से यह पत्र चार सम्बन्धित प्रश्न उठाता है। पहला, लोहिया के चौखम्भा राज्य और सप्तक्रांति के आपसी सम्बन्ध को उनकी समग्र राजनीतिक दृष्टि में कैसे स्थान दिया जाना चाहिए — क्या यह मात्र एक प्रशासनिक मॉडल था, या इसमें सत्ता, समता और सहभागिता का एक व्यापक मानक–दर्शन निहित था? दूसरा, इस देशज मानक–दृष्टि को सहभागी एवं विमर्शमूलक लोकतंत्र सिद्धांत तथा सहायकता के सिद्धांत से जोड़कर पढ़ने पर, क्या नई विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ उभरती हैं? तीसरा, 73वें–74वें संविधान संशोधन के प्रावधान — विशेषकर अनुच्छेद 243 से 243O तक की संरचना, ग्यारहवीं–बारहवीं अनुसूचियाँ, और उनकी तीन दशक की क्रियान्वयन–यात्रा — लोहिया के आदर्श से किन ठोस बिंदुओं पर मिलती है, और किन बिंदुओं पर विचलित होती है? और चौथा, यदि पंचायती राज संस्थाओं को वास्तव में स्वशासन की इकाइयों में बदलना है, तो लोहिया–आधारित मानक–कसौटी हमें किन नीतिगत दिशाओं की ओर संकेत करती है?

यह पत्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि पंचायती राज संस्थाएँ आज लोहिया के चौखम्भा–आदर्श की केवल औपचारिक छाया हैं — संरचनात्मक रूप से चार स्तर मौजूद हैं, किंतु सत्ता के वास्तविक हस्तांतरण, आर्थिक विकेंद्रीकरण और सहभागी नागरिकता — जो लोहिया की परिकल्पना के अनिवार्य तत्व थे — इनसे वे अब भी दूर हैं। इस अंतराल को केवल तकनीकी–प्रशासनिक सुधारों से नहीं पाटा जा सकता; इसके लिए एक मानक–दृष्टि की आवश्यकता है, और लोहिया का चिंतन आज भी इस दृष्टि के सबसे समृद्ध देशज स्रोतों में से एक है। लोहिया की प्रासंगिकता उनकी नीतिगत सिफारिशों में नहीं, बल्कि उनकी सैद्धांतिक कसौटी में है — एक ऐसी कसौटी जिसके विरुद्ध हम आज की संस्थागत वास्तविकता को माप सकते हैं और सुधार की दिशा तय कर सकते हैं।

3. सैद्धांतिक ढाँचा– इस पत्र का सैद्धांतिक ढाँचा एक–आयामी नहीं है। इसका कारण पद्धतिगत लोभ नहीं, बल्कि विषय की अपनी बहुआयामी संरचना है। शीर्षक स्वयं तीन बिंदुओं को जोड़ता है — डॉ. लोहिया का देशज विकेंद्रीकरण–चिंतन, सहभागी लोकतंत्र का समकालीन आदर्श, और 73वें–74वें संविधान संशोधन की संस्थागत वास्तविकता। इन तीनों के बीच सार्थक संवाद स्थापित करने के लिए एक भी सैद्धांतिक परंपरा अकेले पर्याप्त नहीं। इसीलिए इस पत्र में तीन परंपराओं का सुनियोजित संयोजन प्रस्तावित है — जिसमें प्रत्येक की एक विशिष्ट भूमिका है, और तीनों मिलकर एक ऐसी विश्लेषणात्मक कसौटी बनाते हैं जो न पूर्णतः "आयातित" है, न पूर्णतः "देशज–रूमानी"।

3.1 चौखम्भा राज्य एवं सप्तक्रांतिः केंद्रीय मानक–दृष्टि– लोहिया का "चौखम्भा राज्य" कोई एकल प्रशासनिक प्रस्ताव नहीं था; यह उनकी व्यापक समाजवादी–दार्शनिक दृष्टि का संस्थागत रूप था। इसकी बुनियादी स्थापना यह थी कि सत्ता को गाँव, मंडल (ज़िला), प्रांत और केंद्र — इन चारों स्तंभों में लगभग समान गरिमा और अधिकार के साथ बाँटा जाना चाहिए, न कि पिरामिडीय ढंग से केंद्र की ओर संकेंद्रित किया जाना चाहिए (यादव, 2010; कुमार, 2010)। महत्वपूर्ण यह है कि लोहिया की यह कल्पना केवल राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसमें आर्थिक विकेंद्रीकरण भी अनिवार्य रूप से अंतर्निहित था। उन्होंने "छोटी मशीन" (small–unit machine) का सिद्धांत प्रस्तावित किया — बड़े केंद्रीकृत उद्योग की जगह ऐसे उत्पादन–तंत्र, जिसे गाँव और मंडल स्तर पर, सहकारी श्रम और स्थानीय स्वामित्व के साथ

eISSN 2581-8996
HTTPS://DOI.ORG/10.5281/ZENODO.21966477
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 09, Issue 02, July 2026

चलाया जा सके। लोहिया के लिए राजनीतिक विकेंद्रीकरण के बिना आर्थिक विकेंद्रीकरण अधूरा था, और आर्थिक विकेंद्रीकरण के बिना राजनीतिक विकेंद्रीकरण अर्थहीन।

यहाँ लोहिया का गांधीवादी ग्राम–आदर्श से एक महत्वपूर्ण अंतर उभरता है, जिसे प्रायः अनदेखा किया जाता है। गांधी के "ग्राम स्वराज" में गाँव को आत्मनिर्भर, स्वायत्त इकाई माना गया था — एक ऐसी इकाई जो अन्य स्तरों से लगभग स्वतंत्र रह सकती है। लोहिया का चौखम्भा इस स्वायत्तता–आदर्श से नहीं, बल्कि परस्पर–निर्भर स्वशासन के आदर्श से चलता है। चारों स्तंभ स्वतंत्र नहीं हैं; वे एक–दूसरे को संतुलित और सशक्त करते हैं। साथ ही लोहिया अंबेडकर की उस चिंता को भी स्वीकार करते हैं कि पारंपरिक गाँव जाति–दमन का ढाँचा हो सकता है — इसीलिए उन्होंने अपने विकेंद्रीकरण–चिंतन को "विशेष अवसर" (60 प्रतिशत तक पिछड़े वर्गों — अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति, अल्पसंख्यकों में पिछड़े, और महिलाएँ — के लिए सकारात्मक भेदभाव) के सिद्धांत से जोड़ा। इस अर्थ में चौखम्भा गांधीवादी ग्राम–रूमानियत और अंबेडकरवादी सामाजिक–न्यायपरक चिंता — दोनों के बीच का एक विवेकपूर्ण संश्लेषण है।

चौखम्भा को उनके व्यापक "सप्तक्रांति" दर्शन से जोड़कर देखना अनिवार्य है, अन्यथा वह एक शुष्क प्रशासनिक मॉडल बनकर रह जाता है। सप्तक्रांति — सात एक साथ घटित होने वाली क्रांतियाँ — में लोहिया ने जिन तत्वों को शामिल किया, वे थेः नारी–पुरुष असमानता के विरुद्ध क्रांति; वर्ण या जाति–व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति; विदेशी वर्चस्व और असमानता के विरुद्ध क्रांति; आर्थिक असमानता एवं निजी पूँजी के विरुद्ध क्रांति; असंगत हथियारों एवं युद्ध के विरुद्ध क्रांति; लोकतंत्र में व्यक्ति की निजी वैचारिक स्वतंत्रता के लिए क्रांति; और सत्याग्रह के हथियार से नागरिक–अवज्ञा की क्रांति (यादव, 2010; तोलपडी, 2010)। इन सातों के बीच चौखम्भा राज्य वह संस्थागत औज़ार था जिससे ये क्रांतियाँ केंद्रीकृत राज्य–शक्ति पर निर्भर हुए बिना, नीचे से — जमीनी स्तर से — कार्यान्वित हो सकें। लोहिया का यह मौलिक अंतर्दृष्टि कि आर्थिक–सामाजिक समता के लिए सत्ता का विकेंद्रीकरण अनिवार्य है, केवल एक प्रशासनिक तर्क नहीं था; यह उनकी नैतिक–राजनीतिक दृष्टि का हृदय था।

इस पत्र में लोहिया की यह त्रयी — चौखम्भा (संस्थागत रूप), सप्तक्रांति (नैतिक क्षितिज), और छोटी मशीन/सहकारी श्रम (आर्थिक आधार) — केंद्रीय मानक–कसौटी (normative benchmark) के रूप में प्रयोग की गई है। जब हम 73वें–74वें संशोधन की क्रियान्वयन–वास्तविकता को इसके विरुद्ध रखते हैं, तो प्रश्न केवल यह नहीं होता कि पंचायतें प्रशासनिक रूप से "कितनी सक्षम" हैं, बल्कि यह भी कि क्या वे उस बहुआयामी समता–दृष्टि की सेवा कर रही हैं जिसकी लोहिया ने कल्पना की थी।

3.2 सहभागी एवं विमर्शमूलक लोकतंत्र सिद्धांतः तुलनात्मक–वैश्विक शब्दावली– लोहिया–आधारित देशज कसौटी को अकादमिक रूप से समृद्ध बनाने के लिए एक तुलनात्मक–वैश्विक शब्दावली की आवश्यकता है, ताकि उनका चिंतन आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धांत की बहसों में हस्तक्षेप कर सके, न कि केवल "स्थानीय ऐतिहासिक जानकारी" बनकर रह जाए। इस शब्दावली की सबसे स्थायी बुनियाद कैरोल पेटमैन (1970) ने अपनी Participation and Democratic Theory में रखी, जहाँ उन्होंने सहभागिता को केवल निर्णय–लेने का तंत्र नहीं, बल्कि नागरिकों की "शिक्षा" की प्रक्रिया माना — एक ऐसा अनुभव जिसके माध्यम से वे लोकतांत्रिक नागरिक बनते हैं। पेटमैन के अनुसार लोकतंत्र में हिस्सेदारी लेने से ही नागरिक अपने अधिकारों, कर्तव्यों

और सामूहिक हितों की समझ विकसित करते हैं; इसलिए स्थानीय स्तर की सहभागिता केवल "प्रतीकात्मक" नहीं होनी चाहिए, बल्कि वास्तविक सत्ता–हस्तांतरण के साथ जुड़ी होनी चाहिए।

पेटमैन के इस दार्शनिक स्थापन को शेरी अर्नस्टीन (1969) ने एक व्यावहारिक विश्लेषणात्मक औज़ार में बदला — उनकी "नागरिक सहभागिता की सीढ़ी" (Ladder of Citizen Participation)। इस सीढ़ी में सहभागिता के आठ स्तर हैं, जिन्हें तीन व्यापक श्रेणियों में बाँटा गया है। सबसे नीचे "गैर–सहभागिता" (non–participation) है — जिसमें जोड़–तोड़ (manipulation) और चिकित्सा (therapy) शामिल हैं, अर्थात् ऐसी प्रक्रियाएँ जो सहभागिता का दिखावा करती हैं पर वास्तव में नागरिकों को "शिक्षित" या "ठीक" करने का प्रयास होती हैं। बीच के तीन स्तर — सूचना (informing), परामर्श (consultation), और तुष्टीकरण (placation) — अर्नस्टीन के शब्दों में "प्रतीकवाद" (tokenism) हैं; यहाँ नागरिकों को सुना जाता है, पर उनके सुनने के परिणाम पर उनका कोई वास्तविक प्रभाव नहीं होता। केवल ऊपरी तीन स्तर — साझेदारी (partnership), प्रत्यायोजित शक्ति (delegated power), और नागरिक–नियंत्रण (citizen control) — ही वास्तविक "नागरिक सत्ता" के स्तर हैं, जहाँ सहभागिता का अर्थ वास्तविक निर्णय–अधिकार होता है।

अर्नस्टीन की सीढ़ी की विश्लेषणात्मक शक्ति यह है कि वह किसी भी सहभागी संस्था को केवल "हाँ/नहीं" के आधार पर नहीं, बल्कि सत्ता–वितरण के अनेक स्तरों के आधार पर मूल्यांकन करने की अनुमति देती है। भारत की ग्राम सभा को इस सीढ़ी पर रखने से एक विशिष्ट प्रश्न उभरता है — क्या ग्राम सभा वास्तव में एक "साझेदारी" या "नागरिक–नियंत्रण" की संस्था है, या केवल एक "परामर्श"–मंच है जहाँ नौकरशाही द्वारा तय की गई योजनाओं की मुहर लगाई जाती है? यह प्रश्न हमारे विश्लेषण के लिए केंद्रीय है।

तीसरा घटक यूर्गेन हेबरमास (1996) की विमर्शमूलक लोकतंत्र–अवधारणा है, जिसे उन्होंने Between Facts and Norms में विकसित किया। हेबरमास के अनुसार लोकतांत्रिक वैधता (democratic legitimacy) का स्रोत केवल बहुमत–मतदान नहीं है; वह उन सार्वजनिक विमर्शों की गुणवत्ता में निहित है जिनके माध्यम से नागरिक तर्क–आधारित निर्णयों तक पहुँचते हैं। इस विमर्श की तीन शर्तें हैं — प्रतिभागियों की समानता, बलात्–प्रभाव की अनुपस्थिति, और तर्क की ईमानदार खुली परख। हेबरमास का ढाँचा हमें ग्राम सभा को केवल "बैठक की तिथि" या "उपस्थिति की संख्या" के आधार पर नहीं मापने की चेतावनी देता है, बल्कि यह पूछने पर बाध्य करता है कि क्या वहाँ वास्तविक विमर्श होता है — क्या दलित, आदिवासी, महिलाएँ, भूमिहीन बराबरी की स्थिति में बोल पाते हैं; क्या तर्क की खुली परख होती है; क्या नौकरशाही या स्थानीय प्रभु–जातियों का दबाव अनुपस्थित है।

यह सैद्धांतिक त्रयी — पेटमैन, अर्नस्टीन, हेबरमास — लोहिया के देशज चिंतन को प्रतिस्थापित नहीं करती, बल्कि उसे वैश्विक अकादमिक बहसों से जोड़ने का काम करती है। जो अंतर्दृष्टि लोहिया ने भारतीय संदर्भ में अभिव्यक्त की — कि सत्ता–हस्तांतरण के बिना सहभागिता निरर्थक है — उसे इन पश्चिमी सिद्धांतकारों ने अपनी शब्दावली में दोहराया। दोनों के बीच का यह अंतरराष्ट्रीय संवाद, यदि हम खुले मन से देखें, तो लोहिया के मौलिक चिंतन को आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धांत का एक अग्रगामी उदाहरण सिद्ध करता है।

3.3 सहायकता का सिद्धांतः संवैधानिक–संस्थागत विश्लेषण का औज़ार– सैद्धांतिक ढाँचे का तीसरा घटक — सहायकता का सिद्धांत (Principle of Subsidiarity) — इस पत्र में एक विशिष्ट भूमिका निभाता है: 73वें–74वें संशोधन के प्रावधानों का ठोस संवैधानिक–संस्थागत विश्लेषण। इस सिद्धांत का आधुनिक

अकादमिक स्वरूप औपचारिक रूप से पोप पायस XI के 1931 के विश्वकोश Quadragesimo Anno में सुव्यवस्थित हुआ, जहाँ यह स्थापित किया गया कि "बड़ी और उच्चतर सामूहिकता (higher collectivity) को वे कार्य नहीं सौंपे जाने चाहिए जिन्हें छोटी और अधीनस्थ संस्थाएँ (subordinate bodies) स्वयं कर सकती हैं।" बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में यह सिद्धांत अपने कैथोलिक–धार्मिक मूल से बाहर निकलकर एक व्यापक राजनीतिक–सैद्धांतिक अवधारणा बन गया; एंड्रियास फोलेस्दाल (1998) ने इसका आधुनिक धर्मनिरपेक्ष सैद्धांतिक स्वरूप Journal of Political Philosophy में विस्तार से प्रस्तुत किया, जहाँ इसे यूरोपीय संघ के बहुस्तरीय शासन–ढाँचे के लिए एक विश्लेषणात्मक कसौटी के रूप में विकसित किया गया।

सहायकता के दो पहलू हैं जो हमारे विश्लेषण के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। एक नकारात्मक पहलू है — ऊपरी स्तर को उन कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जिन्हें निचला स्तर स्वयं कर सकता है। और एक सकारात्मक पहलू है — ऊपरी स्तर का दायित्व है कि वह निचले स्तर को उसकी क्षमताओं के अनुरूप कार्य करने के लिए संसाधन, प्रशिक्षण और स्वायत्तता प्रदान करे। भारतीय संदर्भ में इस सिद्धांत की प्रासंगिकता को औपचारिक मान्यता द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की छठी रिपोर्ट Local Governance: An Inspiring Journey into the Future (2007) में मिली, जहाँ इसे स्थानीय शासन–सुधार का स्पष्ट सैद्धांतिक आधार बनाया गया। यह पत्र इस औपचारिक मान्यता को एक कदम आगे ले जाता है — यह प्रस्तावित करता है कि सहायकता का सिद्धांत लोहिया के चौखम्भा–चिंतन में पहले से ही निहित था, यद्यपि उसका शब्दांकन भिन्न था।

यहाँ एक महत्वपूर्ण सैद्धांतिक तर्क उभरता है, जो इस पत्र का मौलिक योगदान है। लोहिया के चौखम्भा और यूरोपीय सहायकता–सिद्धांत के बीच अवधारणात्मक समानताएँ आकस्मिक नहीं हैं। दोनों की मूल स्थापना समान है — निर्णय–अधिकार उस स्तर पर होना चाहिए जो प्रभावित नागरिकों के सबसे निकट हो; ऊपरी स्तर सहायक (subsidiary) हो, नियंत्रक नहीं; और छोटी संस्थाओं को केंद्रीय राज्य द्वारा "अवशोषित" नहीं होना चाहिए। यदि यह सादृश्य सही है — और इस पत्र में इसे विस्तार से प्रस्थापित किया जाएगा — तो हमें लोहिया को केवल "देशज विचारक" के रूप में नहीं, बल्कि सहायकता के सिद्धांत के एक स्वतंत्र भारतीय अभिव्यक्तिकर्ता के रूप में देखना होगा। यह अंतर्दृष्टि इस अध्ययन का एक मौलिक सैद्धांतिक योगदान है।

3.4 त्रिस्तरीय संयोजन का औचित्यः तीनों क्यों, अकेला कोई क्यों नहीं– अंत में यह प्रश्न वैध है कि तीन सैद्धांतिक स्रोतों का यह संयोजन अनावश्यक जटिलता तो नहीं है। इसका उत्तर विषय की आंतरिक संरचना में मिलता है। यदि हम केवल लोहिया के चिंतन से चलते, तो हमारा विश्लेषण एक स्थानीय–ऐतिहासिक अध्ययन बनकर रह जाता, जिसकी अकादमिक प्रासंगिकता वैश्विक बहसों में सीमित होती। यदि हम केवल पेटमैन–अर्नस्टीन–हेबरमास से चलते, तो हम पश्चिमी सिद्धांत को भारतीय अनुभव पर "आरोपित" करते — एक ऐसा प्रयास जिसकी सीमाओं की चर्चा साहित्य समीक्षा में हो चुकी है। यदि हम केवल सहायकता से चलते, तो हमारा विश्लेषण संस्थागत–कानूनी होकर रह जाता, और उसमें वह नैतिक–राजनीतिक गहराई नहीं होती जो लोहिया के चिंतन में निहित है।

तीनों का संयोजन इस तरह कार्य करता है — लोहिया का चौखम्भा हमें केंद्रीय मानक–कसौटी देता है (क्या करना चाहिए और क्यों); पेटमैन–अर्नस्टीन–हेबरमास हमें विश्लेषणात्मक शब्दावली देते हैं (कैसे मापें और तुलना करें); और सहायकता हमें संवैधानिक–संस्थागत अनुप्रयोग का ढाँचा देती है (73वें–74वें संशोधन

के प्रावधानों को किस कसौटी पर परखें)। तीनों मिलकर एक ऐसी विश्लेषणात्मक कसौटी बनाते हैं जो न पूर्णतः देशज है, न पूर्णतः आयातित; बल्कि एक ऐसा संवाद है जिसमें भारतीय राजनीतिक चिंतन आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धांत की बहसों में सक्रिय हस्तक्षेप करता है।

अगले खंडों में इस ढाँचे का उपयोग करके पहले शोध प्रश्न और उद्देश्य स्पष्ट किए जाएँगे, फिर पद्धति का विवरण दिया जाएगा, और उसके बाद 73वें–74वें संशोधन एवं उनकी क्रियान्वयन–यात्रा का व्यवस्थित विश्लेषण किया जाएगा।

4. शोध प्रश्न एवं उद्देश्य– पिछले खंडों में विकसित तर्क से चार परस्पर–संबद्ध शोध प्रश्न निकलते हैं, जिनमें से प्रत्येक सैद्धांतिक ढाँचे के किसी विशिष्ट घटक से जुड़ा है और साहित्य–अंतराल के किसी विशेष पहलू को संबोधित करता है। इस खंड में उन प्रश्नों को औपचारिक रूप दिया गया है और उनसे संबद्ध शोध–उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है, ताकि आगामी विश्लेषण–खंड को केंद्रित दिशा मिल सके।

4.1 शोध प्रश्न– पहला प्रश्न लोहिया के चिंतन की आंतरिक संरचना से जुड़ा है — डॉ. राम मनोहर लोहिया के चौखम्भा राज्य की अवधारणा को उनके व्यापक सप्तक्रांति–दर्शन के साथ किस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए, और यह पठन उनके विकेंद्रीकरण–चिंतन को गांधीवादी "ग्राम स्वराज" तथा अंबेडकरवादी संस्थागत–यथार्थ से किस प्रकार पृथक करता है? यह प्रश्न इस पत्र का मानक–सैद्धांतिक (normative–theoretical) प्रश्न है और सीधे लोहिया–अध्ययन के उस अंतराल को संबोधित करता है जिसकी पहचान साहित्य समीक्षा में की गई है।

दूसरा प्रश्न सैद्धांतिक संवाद से जुड़ा है — लोहिया के चौखम्भा–चिंतन और सहायकता के सिद्धांत के बीच क्या अवधारणात्मक समानताएँ हैं, और क्या इस समानता के आधार पर लोहिया को सहायकता के सिद्धांत के एक स्वतंत्र भारतीय अभिव्यक्तिकर्ता के रूप में देखा जा सकता है? यह प्रश्न पत्र के मौलिक सैद्धांतिक योगदान को केंद्र में रखता है और भारतीय राजनीतिक चिंतन तथा वैश्विक लोकतांत्रिक सिद्धांत के बीच सजीव संवाद स्थापित करने का प्रयास करता है।

तीसरा प्रश्न संवैधानिक–संस्थागत विश्लेषण से जुड़ा है — 73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों के प्रावधान — विशेषकर अनुच्छेद 243 से 243O, ग्यारहवीं एवं बारहवीं अनुसूचियाँ, तथा अनुच्छेद 243G के अंतर्गत निधि–कार्य–कार्मिक (3F) के हस्तांतरण की व्यावहारिक स्थिति — लोहिया के चौखम्भा–आदर्श से किन बिंदुओं पर मिलते हैं और किन बिंदुओं पर विचलित होते हैं? यहाँ विशेष रूप से अनुच्छेद 243G की "may" शब्दावली (जो हस्तांतरण को राज्य के विवेक पर छोड़ती है) का महत्व उभरता है — क्योंकि यही वह संवैधानिक "छूट" है जिसने 3F हस्तांतरण को राज्य–स्तर पर असमान बना दिया है, और यही लोहिया के आदर्श के विरुद्ध सबसे तीखा वास्तविक अंतराल है।

चौथा प्रश्न इस विश्लेषण के नीतिगत निहितार्थ (policy implications) से जुड़ा है — यदि लोहिया–आधारित मानक–कसौटी को स्वीकार किया जाए, तो पंचायती राज संस्थाओं को "स्वशासन की संस्थाओं" में वास्तविक रूप से बदलने के लिए किन दिशाओं में सुधार आवश्यक हैं, और इन सुधारों की सैद्धांतिक–राजनीतिक व्यवहार्यता क्या है? यह प्रश्न पत्र को केवल आलोचनात्मक–वर्णनात्मक अध्ययन बनने से रोकता है और उसे रचनात्मक हस्तक्षेप की दिशा देता है।

eISSN 2581-8996
HTTPS://DOI.ORG/10.5281/ZENODO.21966477
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 09, Issue 02, July 2026

4.2 शोध उद्देश्य– इन प्रश्नों के अनुरूप, इस अध्ययन के पाँच विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं। पहला उद्देश्य है — लोहिया के चौखम्भा राज्य की अवधारणा को उनके संपूर्ण राजनीतिक–दर्शन के भीतर व्यवस्थित रूप से पुनःस्थापित करना, ताकि यह केवल एक प्रशासनिक मॉडल न बनकर, एक व्यापक मानक–राजनीतिक दृष्टि के रूप में उभरे। दूसरा उद्देश्य है — लोहिया के चौखम्भा और सहायकता के सिद्धांत के बीच संरचनात्मक–अवधारणात्मक समानताओं को व्यवस्थित रूप से चिह्नित करना और इसके सैद्धांतिक निहितार्थ स्पष्ट करना। तीसरा उद्देश्य है — 73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों के प्रावधानों का अनुच्छेद–वार विश्लेषण प्रस्तुत करना, विशेषकर उन प्रावधानों का जो सत्ता के वास्तविक हस्तांतरण से जुड़े हैं (अनुच्छेद 243G, 243H, 243–I, 243W, 243X)। चौथा उद्देश्य है — इन प्रावधानों की तीन दशक की क्रियान्वयन–यात्रा को 3F ढाँचे तथा IIPA विकेंद्रीकरण–सूचकांक जैसे मापन–औज़ारों के आधार पर तुलनात्मक रूप से मूल्यांकित करना। और पाँचवाँ उद्देश्य है — इस विश्लेषण से लोहिया–आधारित मानक–कसौटी पर आधारित नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना, जो केवल तकनीकी–प्रशासनिक सुधारों से आगे बढ़कर संरचनात्मक–संवैधानिक दिशा–परिवर्तन की ओर संकेत करें।

इन प्रश्नों और उद्देश्यों को अलग करके प्रस्तुत करने का कारण यह है कि उनका आपसी संबंध विश्लेषणात्मक हो, केवल भाषिक न हो। प्रत्येक प्रश्न किसी न किसी सैद्धांतिक घटक से बंधा है, और प्रत्येक उद्देश्य किसी न किसी शोध–चरण से जुड़ा है। इस स्पष्टता के बिना विश्लेषण खंड बिखर सकता है, या समीक्षकों के लिए यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि "यह पत्र आखिर क्या सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है।" स्पष्ट प्रश्न और स्पष्ट उद्देश्य समीक्षक और पाठक — दोनों के लिए विश्लेषण–प्रक्रिया को पारदर्शी बनाते हैं।

5. शोध पद्धति– यह अध्ययन गुणात्मक, व्याख्यात्मक–विश्लेषणात्मक (qualitative, interpretive–analytical) पद्धति पर आधारित है, जिसकी विशिष्ट विधि दस्तावेज़–विश्लेषण (document analysis) है। राजनीति विज्ञान में यह विधि — जैसा वेस्ली (2010) ने चिह्नित किया है — प्राथमिक एवं द्वितीयक दस्तावेज़ों को व्यवस्थित रूप से पढ़ने, संदर्भित करने और तुलना करने की एक स्थापित पद्धति है, बशर्ते स्रोतों की प्रामाणिकता, संदर्भ की स्पष्टता और व्याख्या की पारदर्शिता कठोरता से बनाए रखी जाए। इस पत्र में इन तीनों मानकों का पालन प्रत्येक खंड के अंत में दी गई सत्यापन–सारांश तालिकाओं के माध्यम से किया गया है।

डेटा स्रोत चार श्रेणियों में विभाजित हैं। पहली — प्राथमिक राजनीतिक–दार्शनिक स्रोत, जिनमें डॉ. लोहिया की मूल कृतियाँ (विशेषकर Marx, Gandhi and Socialism, 1963; Wheel of History, 1955) और उनके भाषण–संग्रह शामिल हैं। दूसरी — प्राथमिक संवैधानिक–कानूनी स्रोतः भारत का संविधान (विशेषतः भाग IX, IXA, अनुच्छेद 243–243ZG, ग्यारहवीं एवं बारहवीं अनुसूचियाँ), संविधान सभा की बहसें, और संबंधित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय। तीसरी — सरकारी नीति–दस्तावेज़ः द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की छठी रिपोर्ट (2007), पंचायती राज मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्टें, IIPA द्वारा तैयार विकेंद्रीकरण–सूचकांक (Alok, 2024), PIB प्रेस विज्ञप्तियाँ, तथा नीति आयोग के प्रकाशन। चौथी — द्वितीयक अकादमिक साहित्यः EPW, Econometrica, Journal of Political Philosophy, JAIP आदि पीयर–रिव्यू पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख।

विश्लेषण की विधि त्रि–चरणीय है। पहले चरण में लोहिया की मूल कृतियों का हर्मेन्यूटिक (hermeneutic) पठन किया गया है, जिसका उद्देश्य चौखम्भा और सप्तक्रांति के आपसी सम्बन्ध को उनके अपने संदर्भ में समझना है। दूसरे चरण में संवैधानिक प्रावधानों का अनुच्छेद–वार व्यवस्थित पठन (systematic textual

reading) किया गया है, विशेषतः "may"/"shall" शब्दावली के भेद पर ध्यान देते हुए, जो अनिवार्य और विवेकाधीन प्रावधानों को अलग करती है। तीसरे चरण में तुलनात्मक–मानक विश्लेषण (comparative–normative analysis) है, जहाँ लोहिया के आदर्श को कसौटी बनाकर संवैधानिक प्रावधानों और उनकी क्रियान्वयन–वास्तविकता का मूल्यांकन किया गया है — 3F ढाँचे और अर्नस्टीन की सीढ़ी को व्यावहारिक मापन–औज़ार के रूप में प्रयोग करते हुए।

पद्धति की सीमाएँ ईमानदारी से स्वीकार्य हैं। यह अध्ययन प्राथमिक क्षेत्र–सर्वेक्षण (field survey) पर आधारित नहीं है; इसकी शक्ति सैद्धांतिक–दस्तावेज़ी विश्लेषण में है, अनुभवजन्य नए आँकड़ों में नहीं। पुनरावृत्ति–योग्यता (replicability) की दृष्टि से सभी स्रोत सार्वजनिक रूप से सुलभ हैं और APA 7th शैली में पूर्णतः उद्धृत हैं, ताकि कोई भी शोधकर्ता विश्लेषण के प्रत्येक चरण को स्वतंत्र रूप से जाँच सके।

6. विश्लेषण एवं निष्कर्ष– इस पत्र की केंद्रीय स्थापना यह है कि पंचायती राज संस्थाएँ लोहिया के चौखम्भा–आदर्श की औपचारिक छाया हैं — संरचनात्मक ढाँचा मौजूद है, किंतु आत्मा अनुपस्थित है। इस स्थापना को अब पाँच परस्पर–सम्बद्ध विश्लेषणात्मक अक्षों (analytical axes) पर व्यवस्थित रूप से परखा गया है: संरचनात्मक, आर्थिक, सहभागी, संवैधानिक–वाक्यगत, और सामाजिक–न्यायपरक। प्रत्येक अक्ष पर लोहिया के आदर्श, 73वें–74वें संशोधन के प्रावधानों, और तीन दशक की क्रियान्वयन–वास्तविकता का त्रिकोणीय मिलान किया गया है।

6.1 संरचनात्मक अक्षः चार स्तंभ बनाम त्रिस्तरीय पिरामिड– लोहिया के चौखम्भा में चार स्तंभ थे — गाँव, मंडल (ज़िला), प्रांत और केंद्र — जो पिरामिडीय नहीं, बल्कि लगभग समान गरिमा वाले संस्थागत साथी थे। 73वें संशोधन ने ग्रामीण क्षेत्र में एक त्रिस्तरीय ढाँचा स्थापित किया — ग्राम पंचायत, मध्यवर्ती (ब्लॉक) पंचायत, और ज़िला पंचायत — जिसे 74वें संशोधन ने नगर पंचायत, नगर परिषद और नगर निगम के तीन शहरी स्तरों से पूरक बनाया। पहली दृष्टि में यह लोहिया के आदर्श के करीब लगता है; किंतु गहराई से देखने पर मौलिक अंतर उभरता है। लोहिया के आदर्श में गाँव, मंडल, प्रांत और केंद्र संवैधानिक साथी थे; भारत की संरचना में पंचायतें राज्य–अधीनस्थ इकाइयाँ हैं, जिनकी शक्तियाँ राज्य विधानमंडल पर निर्भर हैं। यह अंतर केवल पारिभाषिक नहीं, बल्कि संवैधानिक–राजनीतिक है, और इसका सबसे मूर्त प्रमाण अनुच्छेद 243G की भाषा में मिलता है, जिस पर हम आगे लौटेंगे।

नीचे दी गई तालिका में तीनों तत्वों की तुलना सारांश–रूप में प्रस्तुत की गई है।

तालिका 1% लोहिया के चौखम्भा–आदर्श और 73वें–74वें संशोधन की संरचना का तुलनात्मक विश्लेषण

आयाम	लोहिया का चौखम्भा–आदर्श	73वें–74वें संशोधन के प्रावधान	क्रियान्वयन–वास्तविकता (2024 तक)
स्तंभों की संख्या	चार — समान गरिमा	तीन ग्रामीण + तीन शहरी + राज्य + केंद्र	संस्थागत रूप से मौजूद
स्तंभों की स्थिति	संवैधानिक साथी	राज्य–अधीनस्थ	अत्यंत आश्रित

eISSN 2581-8996
HTTPS://DOI.ORG/10.5281/ZENODO.21966477
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 09, Issue 02, July 2026

कार्य–हस्तांतरण	अनिवार्य, स्पष्ट	विवेकाधीन ("may"), 11वीं / 12वीं अनुसूची	असमान, अपूर्ण
निधि–हस्तांतरण	स्थानीय स्तर पर	राज्य वित्त आयोग के माध्यम से	कुल SOR का <1% (अपवादः केरल 2.84%)
आर्थिक विकेंद्रीकरण	सहकारी उत्पादन, छोटी मशीन	कोई प्रावधान नहीं	पूर्णतः अनुपस्थित
सहभागिता	विमर्शमूलक–सक्रिय	ग्राम सभा (अनुच्छेद 243A)	45.5% कहते हैं पारदर्शिता का अभाव
सामाजिक न्याय	विशेष अवसर (60%)	अनुसूचित जाति / जनजाति / महिला आरक्षण	46% महिला प्रतिनिधित्व, पर "प्रधान–पति" समस्या

स्रोतः भारत का संविधान (भाग IX एवं IXA); IIPA–MoPR (2024) Status of Devolution to Panchayats in States, 2024; NIRDPR (2025) National Study on Low Participation in Gram Sabha; PIB Press Release, 30 जुलाई 2025.

6.2 आर्थिक अक्षः सबसे गहरा और सबसे उपेक्षित अंतराल– लोहिया के चौखम्भा में सबसे मौलिक तत्व — जो उन्हें केवल एक प्रशासनिक विकेंद्रीकरण–सिद्धांतकार से अलग करता है — वह था आर्थिक विकेंद्रीकरण। छोटी मशीन, सहकारी श्रम, स्थानीय स्वामित्व और गाँव–स्तर की उत्पादन–प्रणाली — ये उनके लिए राजनीतिक विकेंद्रीकरण के अनिवार्य साथी थे। 73वें–74वें संशोधन में इसका पूर्णतः अभाव है। अनुच्छेद 243G "आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजना बनाने" की बात करता है, किंतु यह योजना केंद्रीय–राज्यीय आर्थिक ढाँचे के भीतर सीमित है; उत्पादन–प्रणाली के विकेंद्रीकरण का कोई संवैधानिक स्थान नहीं है। पंचायतें आज केंद्र और राज्य द्वारा तय की गई कल्याणकारी योजनाओं (मनरेगा, पीएमजीएसवाई, स्वच्छ भारत मिशन आदि) की वितरण–एजेंसी बनकर रह गई हैं; वे स्वतंत्र आर्थिक इकाइयाँ नहीं हैं। यही वह गहन दरार है जो लोहिया के आदर्श और वर्तमान वास्तविकता के बीच सबसे स्पष्ट है, और यही कारण है कि पंचायती राज को "चौखम्भा की छाया" कहा जा सकता है — रूप वहाँ है, आर्थिक सार अनुपस्थित है।

6.3 संवैधानिक–वाक्यगत अक्षः "may" शब्द की राजनीतिक कीमत– अनुच्छेद 243G की एक शब्दावली इस पूरे विश्लेषण की धुरी है — "the Legislature of a State may." यह "may" — चाहिए (shall) नहीं — पूरे 73वें संशोधन की सबसे बड़ी संवैधानिक कमज़ोरी है। यह शब्द राज्य विधानमंडलों को यह विवेक देता है कि वे पंचायतों को कितने कार्य, कितनी शक्तियाँ, कितने संसाधन हस्तांतरित करें। ग्यारहवीं अनुसूची के 29 विषय — कृषि से लेकर लघु सिंचाई, ग्रामीण आवास, प्राथमिक शिक्षा और सार्वजनिक वितरण तक — केवल "सूचक" (illustrative) हैं, अनिवार्य नहीं। इसी विवेकाधीनता का परिणाम है वह "देश के भीतर देश" जैसा असमान परिदृश्य जिसे IIPA विकेंद्रीकरण–सूचकांक 2024 सामने रखता है — कर्नाटक 72.23 अंक (सर्वोच्च) पर, केरल 70.59, तमिलनाडु 68.38, महाराष्ट्र 61.44, उत्तर प्रदेश 60.07 पर, जबकि राष्ट्रीय औसत

केवल 43.89। सबसे नीचे — दादरा–नगर हवेली एवं दमन–दीव 13.62, पुडुचेरी 16.16, लद्दाख 16.18। यह अंतर आकस्मिक नहीं; यह अनुच्छेद 243G की "may" का सीधा राजनीतिक परिणाम है।

लोहिया के चौखम्भा में यह विवेकाधीनता संभव नहीं थी, क्योंकि उनके आदर्श में चारों स्तंभों की गरिमा संवैधानिक थी, ऊपरी स्तर के विवेक पर निर्भर नहीं। यहाँ हमारा सैद्धांतिक तर्क — कि लोहिया सहायकता के सिद्धांत के एक स्वतंत्र भारतीय अभिव्यक्तिकर्ता थे — विशेष रूप से पैना हो जाता है। सहायकता (subsidiarity) के दोनों पहलू — नकारात्मक (ऊपरी स्तर निचले के काम में हस्तक्षेप न करे) और सकारात्मक (ऊपरी स्तर निचले को सशक्त करे) — भारतीय संविधान की "may"–आधारित संरचना में केवल आंशिक रूप से लागू हैं। Local Governance रिपोर्ट (2007) ने इस समस्या को स्पष्ट रूप से पहचाना और सहायकता को स्थानीय शासन–सुधार का सैद्धांतिक आधार बनाया, किंतु इसकी सिफारिशों का क्रियान्वयन आधा–अधूरा ही रहा।

निधि–हस्तांतरण की कहानी और भी तीखी है। 2013–14 में कुल विकेंद्रीकरण की मात्रा 39.9 प्रतिशत थी, जो 2021–22 में बढ़कर मात्र 43.9 प्रतिशत हुई — आठ वर्षों में केवल चार प्रतिशत की वृद्धि, जो प्रगति की गति के बारे में पर्याप्त कुछ कह देती है। पंचायतों के राजस्व का अंश राज्य के "स्वयं के राजस्व" (State's Own Revenue, SOR) में 2021–22 में केरल में 2.84 प्रतिशत, आंध्र प्रदेश में 2.42 प्रतिशत, कर्नाटक में 0.67 प्रतिशत और तमिलनाडु में केवल 0.31 प्रतिशत रहा। अर्थात्‌ जिन राज्यों को "विकेंद्रीकरण–अग्रणी" माना जाता है, उनमें भी पंचायतों का स्वतंत्र राजस्व–स्रोत लगभग नगण्य है। लोहिया के चौखम्भा में यह स्थिति उनके मूल दर्शन के विरुद्ध होती — क्योंकि उनके लिए "राज्य के राजस्व का पर्याप्त हिस्सा गाँव में रहना चाहिए।"

6.4 सहभागी अक्ष: ग्राम सभा और अर्नस्टीन की सीढ़ी– सहभागी लोकतंत्र की दृष्टि से ग्राम सभा — जो अनुच्छेद 243A के तहत गठित है — 73वें संशोधन का सबसे रचनात्मक हस्तक्षेप है, क्योंकि इसे प्रत्यक्ष लोकतंत्र की एक स्थायी संस्थागत इकाई बनाया गया। किंतु ग्राम सभा की व्यावहारिक स्थिति पेटमैन के "शैक्षिक सहभागिता" के आदर्श से बहुत दूर है। पंचायती राज मंत्रालय ने NIRDPR के माध्यम से 2025 में जो राष्ट्रीय अध्ययन (National Study on Low Participation in Gram Sabha) प्रकाशित किया, वह इस अंतराल को स्वयं सरकारी दस्तावेज़ के रूप में स्वीकार करता है। 26 राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों के 213 ज़िलों में 400 ग्राम पंचायतों के 7,800 उत्तरदाताओं पर आधारित इस अध्ययन ने पाया कि 55.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आजीविका एवं समय–संबंधी बाधाओं को ग्राम सभा में न आने का प्रमुख कारण बताया; 45.5 प्रतिशत ने पारदर्शिता की कमी की शिकायत की; 41.9 प्रतिशत ने कहा कि बैठकों में कोई दृश्यमान परिणाम नहीं दिखते; और 33.4 प्रतिशत ने कहा कि विमर्श दोहरावपूर्ण एवं औपचारिकता–मात्र बनता जा रहा है।

यदि हम अर्नस्टीन (1969) की सहभागिता–सीढ़ी को यहाँ लागू करें, तो यह चित्र स्वतः स्पष्ट हो जाता है। भारत की अधिकांश ग्राम सभाएँ आज सीढ़ी के मध्य के तीन पायदानों — "सूचना", "परामर्श" और "तुष्टीकरण" — पर हैं, अर्थात् "प्रतीकवाद" के क्षेत्र में। नागरिकों को सूचना दी जाती है, कभी–कभी उनसे परामर्श भी लिया जाता है, कभी–कभी उनकी शिकायतें दर्ज होती हैं — किंतु वास्तविक निर्णय–अधिकार (delegated power) और नागरिक–नियंत्रण (citizen control) जैसे ऊपरी पायदान अभी दूर हैं। हेबरमास (1996) की विमर्शमूलक–लोकतंत्र–कसौटी पर तो स्थिति और भी तीखी है — क्योंकि जहाँ 33.4 प्रतिशत नागरिक स्वयं

eISSN 2581-8996
HTTPS://DOI.ORG/10.5281/ZENODO.21966477
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 09, Issue 02, July 2026

कह रहे हों कि "विमर्श औपचारिकता है", वहाँ बलात्–प्रभाव–मुक्त तर्क–आधारित विमर्श की अपेक्षा करना असंगत है।

केरल का जनयोजना अभियान (1996–2001) और उसकी उत्तरवर्ती संस्थागत यात्रा एक ऐसा अपवाद है जो नियम की पुष्टि करती है (Isaac & Franke, 2021)। वहाँ राज्य ने अपनी योजना–निधि का लगभग 35–40 प्रतिशत स्थानीय स्तर पर हस्तांतरित किया, ग्राम सभा को वास्तविक निर्णय–अधिकार दिया, और तकनीकी–प्रशिक्षण की समानांतर व्यवस्था की। परिणामतः केरल की ग्राम सभाएँ अर्नस्टीन की सीढ़ी के ऊपरी पायदानों — "साझेदारी" और "प्रत्यायोजित शक्ति" — के करीब हैं। किंतु केरल का उदाहरण भी दिखाता है कि यह उपलब्धि संवैधानिक अनिवार्यता से नहीं, राज्य–स्तरीय राजनीतिक इच्छा–शक्ति से आई। जो राज्य सत्ता–वितरण के लिए राजनीतिक रूप से इच्छुक नहीं हैं, वहाँ ग्राम सभा प्रतीक–मात्र बनकर रह जाती है। यही 243G की "may" का असल परिणाम है।

6.5 सामाजिक–न्यायपरक अक्षः सप्तक्रांति की आंशिक पूर्ति– लोहिया की सप्तक्रांति में नारी–पुरुष असमानता और जाति–आधारित असमानता के विरुद्ध क्रांतियाँ केंद्रीय थीं। 73वें संशोधन (अनुच्छेद 243D) ने अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं के लिए एक–तिहाई आरक्षण अनिवार्य किया, और 21 राज्यों तथा दो केंद्रशासित प्रदेशों ने इसे 50 प्रतिशत तक बढ़ा दिया है। परिणाम असाधारण है — लगभग 14.5 लाख निर्वाचित महिला प्रतिनिधि, कुल का 46 प्रतिशत, जो विश्व में अनुपम है। यह लोहिया की "विशेष अवसर" (60 प्रतिशत तक) की परिकल्पना की आंशिक पूर्ति है।

किंतु आंशिक ही, पूर्ण नहीं। "प्रधान–पति" (या "सरपंच–पति") की समस्या — जिसमें निर्वाचित महिला प्रतिनिधि नाम–मात्र होती है और वास्तविक निर्णय पुरुष रिश्तेदार लेते हैं — दिखाती है कि केवल औपचारिक आरक्षण सत्ता–हस्तांतरण के बराबर नहीं है। मार्च 2025 में छत्तीसगढ़ के पारसवाड़ा गाँव में छह पुरुषों ने निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के स्थान पर शपथ ली — यह घटना अपवाद नहीं, नियम की स्पष्ट अभिव्यक्ति थी। साथ ही चट्टोपाध्याय एवं दुफ्लो (2004) के प्रयोगात्मक अध्ययन ने यह भी दिखाया है कि जहाँ महिलाएँ वास्तविक निर्णय–अधिकार का प्रयोग कर पाती हैं, वहाँ पेयजल, सड़क और स्वच्छता जैसी सार्वजनिक वस्तुओं की प्राथमिकता में स्पष्ट परिवर्तन आता है। अर्थात्, महिला–प्रतिनिधित्व की परिवर्तनकारी शक्ति वास्तविक है — पर उसका पूर्ण अनुभव तभी संभव है जब उन्हें सत्ता–हस्तांतरण भी हो, केवल स्थान–हस्तांतरण नहीं।

6.6 केंद्रीय निष्कर्षः छाया–चौखम्भा की समाजशास्त्रीय संरचना– पाँचों अक्षों पर हुए विश्लेषण से एक समग्र चित्र उभरता है, जिसे इस पत्र की केंद्रीय स्थापना कहा जा सकता है। पंचायती राज संस्थाएँ लोहिया के चौखम्भा–आदर्श की छाया इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने चौखम्भा के रूप (चार स्तरों की संस्थागत उपस्थिति) को तो अपनाया, पर उसकी आत्मा (आर्थिक विकेंद्रीकरण, अनिवार्य कार्य–हस्तांतरण, वास्तविक सहभागिता, और सप्तक्रांति के व्यापक नैतिक क्षितिज) को नहीं। यह चूक आकस्मिक नहीं थी — यह उन ऐतिहासिक–राजनीतिक शक्तियों का परिणाम थी जिन्होंने 1980–90 के दशक में विकेंद्रीकरण–सुधारों को उदारीकरण के व्यापक ढाँचे में समायोजित किया, जहाँ पंचायतों को "स्वशासन की इकाई" कम, "योजना–वितरण की दक्ष एजेंसी" अधिक बनाया गया।

यह अंतराल तकनीकी नहीं, बल्कि संरचनात्मक–राजनीतिक है। इसका सुधार भी केवल तकनीकी नहीं हो सकता — कोई भी वित्त आयोग–सूत्र, कोई भी प्रशिक्षण–मॉड्यूल, कोई भी म–गवर्नेंस उपकरण अकेले इसे नहीं भर सकता। इसके लिए एक मानक–राजनीतिक कल्पना चाहिए, और लोहिया का चौखम्भा — यदि उसे उसकी संपूर्ण सप्तक्रांति–आधारित पूर्णता में पढ़ा जाए — इस कल्पना का एक सशक्त देशज स्रोत है।

7. विवेचना– पूर्ववर्ती खंडों के विश्लेषण को अब उस साहित्य और सिद्धांत की रोशनी में रखना आवश्यक है जिससे यह पत्र संवाद करता है। तीन स्तरों पर इस अध्ययन का योगदान स्पष्ट होता है।

सबसे मौलिक हस्तक्षेप वह है जो पत्र लोहिया–अध्ययन और सहायकता–सिद्धांत — दोनों धाराओं — में करता है। मही पाल (2011) ने चौखम्भा को पंचायती राज से जोड़ने का प्रारंभिक प्रयास किया, किंतु इस अध्ययन ने आगे बढ़कर यह प्रस्थापित किया कि लोहिया ने आधुनिक सहायकता–सिद्धांत की स्वतंत्र भारतीय अभिव्यक्ति दी थी, यद्यपि उन्होंने "subsidiarity" शब्द का प्रयोग नहीं किया। यह अंतर्दृष्टि लोहिया को "स्थानीय ऐतिहासिक विचारक" से आगे बढ़ाकर, वैश्विक लोकतांत्रिक–सैद्धांतिक बहसों में सक्रिय हस्तक्षेपकर्ता के रूप में स्थापित करती है। साथ ही यह पश्चिमी–केंद्रित सहायकता–साहित्य को भी चुनौती देती है, यह दिखाकर कि इस सिद्धांत के "क्षेत्रीय संस्करण" (regional articulations) कैथोलिक यूरोप से बाहर भी स्वतंत्र रूप से विकसित हुए।

दूसरा योगदान पद्धतिगत है — यह पत्र दिखाता है कि देशज मानक–दृष्टि, वैश्विक विश्लेषणात्मक शब्दावली, और संस्थागत–कानूनी विश्लेषण को एक साथ जोड़ा जा सकता है, बशर्ते तीनों की भूमिकाएँ स्पष्ट रूप से विभाजित हों। यह पद्धति भारतीय राजनीति विज्ञान की उन धाराओं के लिए उपयोगी है जो न "आयातित सिद्धांत के अनुप्रयोग" से संतुष्ट हैं, न "देशज विचारकों के अलगाव" से।

विश्लेषण से जो सबसे स्पष्ट नीतिगत सुझाव उभरता है, वह अनुच्छेद 243G की "may" शब्दावली से जुड़ा है। जब तक कार्य–हस्तांतरण राज्य विधानमंडलों के विवेक पर निर्भर रहेगा, तब तक विकेंद्रीकरण–सूचकांक में कर्नाटक (72.23) और लद्दाख (16.18) के बीच का अंतर बना रहेगा। एक संवैधानिक संशोधन जो ग्यारहवीं अनुसूची के कम–से–कम मूल विषयों के हस्तांतरण को अनिवार्य बनाए, इस असमानता को कम कर सकता है। किंतु इस पत्र का व्यापक तर्क यह भी है कि केवल संवैधानिक–कानूनी सुधार पर्याप्त नहीं है; लोहिया के दर्शन का आर्थिक आयाम — छोटी मशीन, सहकारी उत्पादन, स्थानीय स्वामित्व — पंचायती राज–सुधार की बहस में लौटाना होगा, अन्यथा पंचायतें केवल "वितरण–एजेंसी" की भूमिका में बंधी रहेंगी।

यह अध्ययन प्राथमिक क्षेत्र–सर्वेक्षण पर आधारित नहीं है, अतः इसमें ग्राम पंचायत–स्तर पर सूक्ष्म व्यवहारिक बारीकियाँ अंकित नहीं हो पातीं। साथ ही, यह विश्लेषण मुख्यतः भारतीय संदर्भ तक सीमित है; ब्राज़ील (पोर्तो एलेग्रे), दक्षिण अफ्रीका, या दक्षिण–पूर्व एशिया के विकेंद्रीकरण–अनुभवों से व्यवस्थित तुलना भावी शोध का विषय हो सकती है। तीसरी सीमा यह है कि लोहिया की कुछ मूल कृतियों — विशेषकर उनकी सामयिक पत्रकारिता — तक इस अध्ययन में पर्याप्त पहुँच नहीं बन पाई; प्रामाणिक संग्रहालयीय (archival) कार्य से इस अध्ययन के तर्क को और गहराई मिल सकती है।

8. निष्कर्ष– इस पत्र का केंद्रीय तर्क यह था कि 73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से स्थापित पंचायती राज संस्थाएँ डॉ. राम मनोहर लोहिया के "चौखम्भा राज्य" की औपचारिक छाया हैं — संरचना की उपस्थिति के बावजूद उस आत्मा से रिक्त, जो लोहिया के आदर्श का हृदय थी। पाँच विश्लेषणात्मक अक्षों

eISSN 2581-8996
HTTPS://DOI.ORG/10.5281/ZENODO.21966477
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 09, Issue 02, July 2026

— संरचनात्मक, आर्थिक, संवैधानिक–वाक्यगत, सहभागी, और सामाजिक–न्यायपरक — पर हुए मूल्यांकन से यह तर्क विभिन्न दिशाओं से पुष्ट हुआ। ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध 29 विषय हैं, पर अनुच्छेद 243G की "may" शब्दावली ने कार्य–हस्तांतरण को राज्य–विवेक पर छोड़ दिया; परिणामतः IIPA विकेंद्रीकरण–सूचकांक 2024 में कर्नाटक (72.23) और लद्दाख (16.18) के बीच एक "भारत के भीतर कई भारत" जैसी विसंगति उभरती है। निधि–हस्तांतरण की गति इतनी धीमी रही कि आठ वर्षों (2013–14 से 2021–22) में विकेंद्रीकरण की मात्रा केवल चार प्रतिशत अंक बढ़ी। NIRDPR–MoPR (2025) के राष्ट्रीय अध्ययन ने स्वयं सरकारी दस्तावेज़ के रूप में स्वीकार किया कि ग्राम सभा — जो प्रत्यक्ष लोकतंत्र की संस्थागत आत्मा होनी थी — अब भी अर्नस्टीन की सीढ़ी के "प्रतीकवाद" के पायदान पर टिकी हुई है। और सबसे गहरा अंतराल आर्थिक है — लोहिया की छोटी–मशीन, सहकारी श्रम और स्थानीय स्वामित्व की परिकल्पना संविधान की चौखम्भा–संरचना में कहीं दिखाई नहीं देती।

इस पत्र का पहला योगदान लोहिया–अध्ययन की उस धारा में हस्तक्षेप है जिसने अब तक सप्तक्रांति और जाति–चिंतन पर पर्याप्त ध्यान दिया, पर चौखम्भा को संस्थागत विश्लेषण से जोड़ने का काम अधूरा छोड़ रखा था। दूसरा योगदान सैद्धांतिक है — यह प्रस्थापना कि लोहिया आधुनिक सहायकता–सिद्धांत के एक स्वतंत्र भारतीय अभिव्यक्तिकर्ता थे, जो उन्हें वैश्विक लोकतांत्रिक बहसों का सक्रिय हिस्सेदार बनाती है, केवल "क्षेत्रीय पूर्वज" नहीं। तीसरा योगदान पद्धतिगत है — त्रिस्तरीय सैद्धांतिक ढाँचे (देशज मानक–दृष्टि, वैश्विक विश्लेषणात्मक शब्दावली, संस्थागत–कानूनी विश्लेषण) की व्यावहारिक उपयोगिता का प्रदर्शन।

यदि लोहिया–आधारित मानक–कसौटी को स्वीकार किया जाए, तो सुधार–दिशाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। सर्वप्रथम, अनुच्छेद 243G की "may" को कम–से–कम ग्यारहवीं अनुसूची के मूल विषयों — प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, स्वच्छता — के लिए "shall" में बदलना, ताकि हस्तांतरण संवैधानिक अनिवार्यता बने। दूसरा, राज्य वित्त आयोगों की सिफारिशों को केंद्रीय वित्त आयोग–सिफारिशों की तरह ही बाध्यकारी बनाना, और पंचायतों के स्वतंत्र कर–आधार का विस्तार। तीसरा, ग्राम सभा को केवल "बैठक" नहीं, बल्कि एक विमर्शमूलक–निर्णायक निकाय के रूप में पुनःपरिभाषित करना — जिसकी सिफारिशें विशिष्ट विषयों में बाध्यकारी हों। और चौथा, लोहिया की सबसे उपेक्षित अंतर्दृष्टि — आर्थिक विकेंद्रीकरण — को नीति–बहस में लौटाना, जहाँ पंचायतें केवल कल्याणकारी योजनाओं की वितरण–एजेंसी नहीं, बल्कि स्थानीय उत्पादन–अर्थव्यवस्था की इकाइयाँ बनें।

अंतिम विचार लोहिया के प्रति एक बौद्धिक ऋण की स्वीकृति है। वे प्रायः एक ऐसे विचारक के रूप में स्मरण किए जाते हैं जिनकी बात उनके अपने समय में नहीं सुनी गई। यह पत्र यह प्रस्ताव करता है कि आज — जब पंचायती राज तीन दशक की यात्रा पूरी कर चुका है और अपनी अधूरी उपलब्धियों के साथ खड़ा है — लोहिया को सुनना केवल एक ऐतिहासिक स्मरण नहीं, बल्कि एक समकालीन नीतिगत आवश्यकता है। चौखम्भा एक स्मारक नहीं है; यह एक अधूरा एजेंडा है।

संदर्भ सूची

Alok, V. N. (2024). Status of devolution to panchayats in states: An indicative evidence-based ranking, 2024. Indian Institute of Public Administration, for the Ministry of Panchayati Raj, Government of India. https://panchayat.gov.in/

Arnstein, S. R. (1969). A ladder of citizen participation. Journal of the American Institute of Planners, 35(4), 216–224. https://doi.org/10.1080/01944366908977225

Arumugam, M. (1978). Socialist thought in India: The contribution of Rammanohar Lohia. Sterling Publishers.

Chattopadhyay, R., & Duflo, E. (2004). Women as policy makers: Evidence from a randomized policy experiment in India. Econometrica, 72(5), 1409–1443. https://doi.org/10.1111/j.1468-0262.2004.00539.x

Constituent Assembly of India. (1948, November 4). Constituent Assembly debates, Vol. VII (B. R. Ambedkar's speech introducing the Draft Constitution). Lok Sabha Secretariat.

Follesdal, A. (1998). Survey article: Subsidiarity. Journal of Political Philosophy, 6(2), 231–259. https://doi.org/10.1111/1467-9760.00052

Gandhi, M. K. (1938/2010). Hind Swaraj or Indian home rule (Rev. ed.). Navajivan Publishing House. (Original work published 1909)

Government of India. (1992a). The Constitution (Seventy-fourth Amendment) Act, 1992. Ministry of Law and Justice. https://legislative.gov.in/

Government of India. (1992b). The Constitution (Seventy-third Amendment) Act, 1992. Ministry of Law and Justice. https://legislative.gov.in/

Habermas, J. (1996). Between facts and norms: Contributions to a discourse theory of law and democracy (W. Rehg, Trans.). MIT Press. (Original German work published 1992)

Heller, P., & Isaac, T. M. T. (2005). The politics and institutional design of participatory democracy: Lessons from Kerala, India. In B. de Sousa Santos (Ed.), Democratizing democracy: Beyond the liberal democratic canon (pp. 405–443). Verso.

Isaac, T. M. T., & Franke, R. W. (2021). People's planning: Kerala, local democracy and development. LeftWord Books.

Jaffrelot, C. (2003). India's silent revolution: The rise of the low castes in North Indian politics. Permanent Black / C. Hurst & Co.

Jain, L. C. (Ed.). (2005). Decentralisation and local governance: Essays for George Mathew. Orient Longman.

Kelkar, I. (2009). Dr. Rammanohar Lohia: His life and philosophy. Anamika Publishers & Distributors.

Kumar, A. (2010). Understanding Lohia's political sociology: Intersectionality of caste, class, gender and language. Economic and Political Weekly, 45(40), 64–70.

Lohia, R. M. (1955). Wheel of history. Navahind Prakashan.

Lohia, R. M. (1963). Marx, Gandhi and socialism. Navahind Publications.

Mathew, G. (1994/2002). Panchayati raj: From legislation to movement. Concept Publishing Company.

Mathew, G. (Ed.). (2000). Status of panchayati raj in the states and union territories of India, 2000. Institute of Social Sciences / Concept Publishing.

Mathur, K. (2013). Panchayati raj (Oxford India Short Introductions). Oxford University Press.

eISSN 2581-8996
HTTPS://DOI.ORG/10.5281/ZENODO.21966477
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED, INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 09, Issue 02, July 2026

Mehrotra, N. C. (1978). Lohia: A study. Atma Ram & Sons.

Ministry of Panchayati Raj, Government of India. (2007). Local governance: An inspiring journey into the future (Sixth Report of the Second Administrative Reforms Commission). Department of Administrative Reforms & Public Grievances. https://darpg.gov.in/

Ministry of Panchayati Raj, Government of India. (2025, July 30). Government is promoting greater participation of women in local governance and political leadership roles [Press release, PRID 2150216]. Press Information Bureau. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2150216

Mishra, G., & Pandey, B. K. (1992). Rammanohar Lohia: The man and his ism. Eastern Books.

National Institute of Rural Development and Panchayati Raj. (2025). National study report on low participation in gram sabha across states and union territories. Ministry of Panchayati Raj, Government of India. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2279474

Pal, M. (2011). Lohia's thinking on local governments. Economic and Political Weekly, 46(6), 79.

Pateman, C. (1970). Participation and democratic theory. Cambridge University Press. https://doi.org/10.1017/CBO9780511720444

Pius XI, Pope. (1931). Quadragesimo anno [Encyclical letter on the reconstruction of the social order]. Vatican. https://www.vatican.va/content/pius-xi/en/encyclicals/documents/hf_p-xi_enc_19310515_quadragesimo-anno.html

Sinha, S. (2010). Lohia's socialism: An underdog's perspective. Economic and Political Weekly, 45(40), 51–55.

Tolpadi, R. (2010). Context, discourse and vision of Lohia's socialism. Economic and Political Weekly, 45(40), 71–77.

Wesley, J. J. (2010). Qualitative document analysis in political science. In B. Kaal, I. Maks, & A. van Elfrinkhof (Eds.), From text to political positions: Text analysis across disciplines (pp. 135–159). John Benjamins.

Yadav, Y. (2010a). On remembering Lohia. Economic and Political Weekly, 45(40), 46–50.

Yadav, Y. (2010b). What is living and what is dead in Rammanohar Lohia? Economic and Political Weekly, 45(40), 92–107.